सामाजिक-राजनीतिक दर्शन; एक परिचय

(Socio-Political Philosophy, An Introduction)

सामाजिक–राजनीतिक दर्शन का स्वरूप

(Nature of Socio-Political Philosophy)

मनुष्य को सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु माना जाता है। वह समाज एवं राज्य में रहता है। मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में देखा जाता है। अरस्तू का यह कथन यथार्थ है कि **'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यदि कोई मनुष्य समाज में रहने में असमर्थ है या उसे समाज में रहने की आवश्यकता नहीं है तो या तो वह निरा पशु है या देवता है, किन्तु वह मनुष्य नहीं है'**। पुनः, **'कुछ विचारक उसे राजनीतिक प्राणी के रूप में देखते हैं'**। इस प्रकार, संक्षेप में, मनुष्य एक सामाजिक-राजनीतिक प्राणी है। यह भी उल्लेखनीय है कि मानव जीवन का एक उद्देश्य है, साध्य है। वह इस साध्य की पूर्ति एकान्त में या अकेले नहीं कर सकता। इस उद्देश्य या साध्य की पूर्ति समाज एवं राज्य में ही हो सकती है। इसकी पूर्ति के लिए एक आदर्श सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। ऐसी **आदर्श सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की रूपरेखा निर्धारित करना सामाजिक-राजनीतिक दर्शन का कार्य है।** यह भी उल्लेखनीय है कि समाज सतत् परिवर्तनशील संस्था है। आवश्यकतानुसार राज्य की राजनीतिक व्यवस्था में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहु-आयामी प्रगति के फलस्वरूप सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक गतिविधियों में जटिलता एवं विविधता के कारण परम्परागत मूल्य अप्रासंगिक होने लगते हैं और उनके स्थान पर नवीन एवं अत्याधुनिक मूल्यों की स्वीकृति अपेक्षित हो जाती है। इस कारण मानव-हित में समाज के आदर्शों, लक्ष्यों और मूल्यों को निर्धारित करने के लिए सामाजिक-राजनीतिक दर्शन को सतत् प्रयासरत रहना पड़ता है।

सामाजिक-राजनीतिक दर्शन वास्तव में दर्शनशास्त्र की एक शाखा है। सामाजिक-राजनीतिक दर्शन का अर्थ है, समाज एवं राज्य का दर्शन, अथवा समाज एवं राज्य का दार्शनिक दृष्टि से अनुशीलन। यह समाज एवं राज्य के विषय में आदर्शों (Ideals), मूल्यों (Values) और मानकों (Norms) का दार्शनिक निर्धारण है। सामाजिक-राजनीतिक दर्शन के दो पक्ष हैं—समाज दर्शन एवं राजनीति दर्शन। समाज दर्शन और राजनीति दर्शन में अन्तर है। समाज दर्शन का क्षेत्र राजनीति दर्शन की तुलना में अधिक व्यापक है और यह भी कहा जा सकता है कि समाज दर्शन में राजनीति दर्शन भी अन्तर्भूत है। चूँकि राज्य भी समाज के अन्तर्गत है, यह एक निश्चित भू-भाग में रहने वाला राजनीतिक समाज है। अतः दोनों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करने के बजाय सामाजिक-राजनीतिक दर्शन के रूप

में एक साथ अध्ययन अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि ज्ञान-विज्ञान की शाखा के रूप में यह समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र से भिन्न है। **समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र सामाजिक विज्ञान (Social science) के अन्तर्गत आते हैं और प्राकृतिक विज्ञानों (Natural sciences)--भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, आदि- की तरह समाज एवं राज्य के विषय में केवल विशिष्ट तथ्यों का ही विवरण नहीं देते, अपितु सामान्य नियमों के अन्तर्गत उनकी व्याख्या भी करते हैं।** इस प्रकार समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र स्वरूपतः तथ्यपरक या वर्णनात्मक हैं। **सामाजिक-राजनीतिक दर्शन स्वरूपतः मानपरक (Normative) होने के कारण आदर्शों, मूल्यों एवं मानकों से सम्बन्धित है।** इसी कारण यह समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र से भिन्न है। राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र भी क्रमशः समाज एवं राज्य का अध्ययन करते हैं। किन्तु उनके अध्ययन का दृष्टिकोण तथ्यात्मक, वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक है। ये विज्ञान यह स्पष्ट करते हैं कि उनकी विषय-वस्तु क्या है (What their subject matter is)? वे इस बात का विश्लेषण करते हैं कि मानव के सम्बन्ध में सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का क्या स्वरूप है? इसके विपरीत, **सामाजिक-राजनीतिक दर्शन मानपरक होने के कारण समाज एवं राज्य के मानकों या आदर्शात्मक मानदण्डों का निर्धारण करते हैं।** वह यह भी स्पष्ट करता है कि हमें क्या करना चाहिए (What we ought to do)? सामाजिक-राजनीतिक दर्शन यह निर्धारित करना चाहता है कि मानव के सम्बन्ध में एक आदर्श सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप कैसा होना चाहिए? यह भी उल्लेखनीय है कि यह सामाजिक विज्ञानों के विपरीत मानव समस्याओं का समन्वयात्मक अध्ययन करता है और ऐसी अद्यतन सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहता है जिसमें मुनष्य का सर्वांगीण विकास हो सके। पुनः, इसके निर्धारण के लिए इसे सामाजिक-राजनीतिक तथ्यों की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह इसके अभाव में अपना कार्य सफलतापूर्वक सम्पादित नहीं कर सकता। यह उपर्युक्त सामाजिक विज्ञानों से, प्राकृतिक विज्ञानों से भी, सामग्री के रूप में मानव जीवन के तथ्यों को ग्रहण करता है और उसका समन्वयात्मक एवं दार्शनिक अध्ययन करते हुए आदर्श सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के मानकों का निर्धारण करता है। इस प्रकार तथ्यपरक विज्ञान (सामाजिक विज्ञान एवं प्राकृतिक विज्ञान) 'प्रथम श्रेणी की खोज' (First-order enquiry) है, जबकि **सामाजिक-राजनीतिक दर्शन 'द्वितीय श्रेणी की खोज' (Second-order enquiry) है।** इसी कारण सामाजिक-राजनीतिक दार्शनिक (प्लेटो, अरस्तू, हॉब्स, लॉक, रूसो, जे० एस० मिल, आदि) प्राचीन काल से ही समकालीन सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की आलोचना करते रहे हैं और एक आदर्श सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के मानकों का निर्धारण करते रहे हैं। तात्पर्य यह है कि सामाजिक-राजनीतिक दर्शन समकालीन सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की आलोचना करता है और उसका आदर्शात्मक विकल्प भी प्रस्तुत करता है।

सामाजिक-राजनीतिक दर्शन का कार्य उन स्थितियों की व्याख्या करना है जिनका मानव जीवन की आवश्यकताओं, इच्छाओं और उद्देश्यों से सम्बन्ध है। इनकी जाँच एवं

खोज वैज्ञानिक-पद्धति और इससे नियन्त्रित विज्ञान (समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आदि) नहीं कर सकते। यह कार्य दर्शनशास्त्र या उसकी शाखा ही कर सकती है। जैसे, व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्ध के विषय में विचार करते समय हॉब्स, लॉक, रूसो, हेगेल, टी० एच० ग्रीन और लास्की, आदि विचारकों ने अपनी मान्यताओं के अनुरूप राजनीतिक दायित्व के भिन्न-भिन्न आधार एवं भिन्न-भिन्न सीमाओं का विवेचन किया। इनमें किसका सिद्धान्त तर्कसंगत है? इस पर तर्क-वितर्क हो सकता है, किन्तु कोई अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह है कि सामाजिक-राजनीतिक दर्शन में अनेक व्याख्याएँ एक साथ प्रचलित रह सकती हैं। प्राचीन काल से प्रचलित समाज-राज दार्शनिक तर्कों के आधार पर मानव जीवन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करने में सहायता मिलती है। इसके विपरीत, तथ्यात्मक विज्ञानों में किसी घटना की नवीन व्याख्या स्वीकार कर लेने पर पुरानी व्याख्या का परित्याग कर दिया जाता है। जैसे, खगोलशास्त्र में कोपरनिकस का 'सूर्य-केन्द्रित सौर मंडल का सिद्धान्त' स्वीकार कर लेने पर टाल्मी का 'पृथ्वी-केन्द्रित सौरमण्डल का सिद्धान्त' छोड़ दिया गया। जे. एस. मैकेंजी ने समाज दर्शन को परिभाषित किया। उसकी परिभाषा समान रूप से सामाजिक-राजनीतिक दर्शन पर भी लागू होती है। उस के अनुसार, **''समाज दर्शन, विशेष रूप से मानव जाति के संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और वह उस संगठन के साथ मानव जीवन के सामाजिक पहलुओं के महत्त्व की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह विशेष रूप से जीवन के मूल्यों, उद्देश्यों तथा आदर्शों का अध्ययन है.......समाज दर्शन का विशेष कार्य तथ्यों की खोज करना नहीं है, क्योंकि इसे अन्य विज्ञानों से अपने तथ्य ग्रहण करने पड़ते हैं। यह उनका विश्लेषण करने की चेष्टा करता है''।**

मैकेंजी की उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है–

(क) सामाजिक-राजनीजिक दर्शन एक आदर्शमूलक या नियामक विज्ञान (Normative Science) है। यह समाज एवं राज्य के मूल्यों, आदर्शों एवं नियामक मानकों का अध्ययन करता है। **इसके निर्णय 'मूल्यपरक' होते हैं।** इसका सम्बन्ध 'चाहिए' (Ought) से है। यह सामाजिक और प्राकृतिक दोनों प्रकार के विज्ञानों से मानव जीवन से सम्बन्धित तथ्यों को ग्रहण करके आदर्श समाज-व्यवस्था के मूल्यों, आदर्शों और मानकों का निर्धारण करता है।

(ख) सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की प्रकृति द्रार्शनिक है। यह इस दृष्टि से द्वितीय श्रेणिक प्रयास है, व्यक्ति और समाज के, व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों का बौद्धिक अनुशीलन है। यह सामाजिक समस्याओं, सामाजिक मूल्यों का दार्शनिक या बौद्धिक अध्ययन करता है। यह विभिन्न विज्ञानों से गृहीत तथ्यों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए मानवहित में उनका चिन्तनात्मक एवं तुलनात्मक अनुशीलन करता है।

(ग) सामाजिक-राजनीतिक दर्शन का दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। यह विभिन्न सामाजिक एवं प्राकृतिक विज्ञानों से अथवा ज्ञान.विज्ञान की विविध शाखाओं से विषय-सामग्री (तथ्य) को ग्रहण करके मानव-हित में उनका मूल्यांकन एवं समन्वय करता है तथा आदर्श सामाजिक व्यवस्था के मानकों को निर्धारित करना चाहता है, जिससे व्यक्ति का

सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके। सामाजिक राजनीतिक दर्शन मानवमात्र को साध्य मानते हुए सच्चे मानव के निर्माण के लिए आदर्श मानव समाज का निर्माण करता है।

इस प्रकार सामाजिक-राजनीतिक दर्शन आदर्शों, मूल्यों एवं परमशुभ के परिप्रेक्ष्य में मानव समाज एवं समाज-राज व्यवस्था के विषय में एक आलोचनात्मक, बौद्धिक एवं समन्वयात्मक अनुशीलन है जो एक नियामक विज्ञान के रूप में आदर्श समाज-राज व्यवस्था के मानकों को स्थापित करने के लिए सचेष्ट है।

सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की विषय-वस्तु
(Scope of Socio-Political Philosophy)

व्यक्ति समाज एवं राज्य का केन्द्र-बिन्दु है और समाज तथा राज्य सभी व्यक्तियों के सर्वांगीण विकास को सम्भव बनाना चाहता है। इस कारण सामाजिक-राजनीतिक दर्शन एक ऐसी आदर्श समाज-राज-व्यवस्था की स्थापना करना चाहता है जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक हो। इसके अतिरिक्त वह व्यक्ति की और समाज एवं राज्य से सम्बद्ध समस्याओं का भी अध्ययन करता है। संक्षेप में, सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की विषय-वस्तु को निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) सामाजिक-राजनीतिक दर्शन व्यक्ति का, समाज का तथा व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्ध का अध्ययन करता है। समाज-दर्शन व्यक्ति के वास्तविक साध्य (लक्ष्य) का विवेचन करता है। समाज के स्वरूप और उसके आधार का विवेचन करता है। वह यह भी स्पष्ट करना चाहता है कि समाज प्राकृतिक है या कृत्रिम? व्यक्ति के सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य (Social and Political values) क्या हैं? यह इस सन्दर्भ में स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुता, सम्प्रभुता, न्याय, विधि, अधिकार, राजनैतिक दायित्व, आदि मूल्यों एवं सम्प्रत्ययों की स्पष्ट अवधारणा करना चाहता है। वह यह भी बताना चाहता है कि व्यक्ति और समाज में क्या सम्बन्ध है। पुनः, सामाजिक-राजनीतिक दर्शन व्यक्ति एवं राज्य से सम्बन्धित समस्याओं पर भी विचार करता है। वह इस सन्दर्भ में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं (यथार्थवाद, प्रत्ययवाद, भाववाद, उपयोगितावाद, अर्थक्रियावाद, उदारवाद, साम्यवाद, समाजवाद, व्यक्तिवाद, फासीवाद, अस्तित्ववाद, इत्यादि) के दृष्टिकोण का मूल्यांकन करता है

(2) सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन–सामाजिक-राजनीतिक दर्शन विवाह, परिवार, वेश्यावृत्ति, राज्य, आश्रमव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था, व्यक्तिगत सम्पत्ति, इत्यादि सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करता है। यह विवाह के स्वरूप (विवाह एक संस्कार है या संविदा), उसके प्रकार, आदर्श विवाह के स्वरूप पर प्रकाश डालता है। वह राज्य के स्वरूप, उसके कार्यों तथा आश्रमव्यवस्था, जातिव्यवस्था एवं वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धान्तों, उनके गुण-दोषों, उनकी अपरिहार्यता अथवा अनावश्यकता पर प्रकाश डालता है। यह राज्य एवं सरकार के स्वरूप और राज्य-प्रशासन की विभिन्न प्रणालियों (लोकतन्त्र, अधिनायकतन्त्र, कुलीनतन्त्र तथा लोकतन्त्र में भी संसदीय, अध्यक्षात्मक, संघात्मक अथवा एकात्मक प्रणालियों) के गुण-दोषों का विवेचन करके मानव समाज की

हितकारी प्रशासन-प्रणाली का विवेचन करता है। यह परिवार के स्वरूप, उसके औचित्य उसके उन्मूलन या आवश्यकता पर भी विचार करता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक-राजनीतिक दर्शन वेश्यावृत्ति के स्वरूप, समाज के लिए उसके औचित्य, एवं अपरिहार्यता एवं अनावश्यकता का भी विवेचन करता है। संक्षेप में, सभी सामाजिक संस्थाएं सामाजिक-राजनीतिक दर्शन के विवेच्य-विषय के अन्तर्गत आती हैं।

(3) धर्म का विवेचन–चूँकि धर्म व्यक्ति का निजी विषय है और सामाजिक ढाँचे के निर्माण में धर्म की प्रभावी भूमिका होती है। अतः सामाजिक-राजनीतिक दर्शन धर्म के स्वरूप, सामाजिक एकता में धर्म की भूमिका, धर्मपरिवर्तन से उत्पन्न होने वाली सामाजिक जटिलताओं, उनके निराकरण के उपायों-धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता, आदि–का भी विवेचन करता है। वह इस सन्दर्भ में विभिन्न विचारधाराओं का भी अध्ययन करता है।

(4) विधि, अधिकार तथा न्याय का विवेचन–सामाजिक-राजनीतिक दर्शन विभिन्न विचारधाराओं के सन्दर्भ में विधि के स्वरूप, स्रोत, आवश्यकता, अधिकार के स्वरूप, विधि तथा अधिकार के पारस्परिक सम्बन्ध, न्याय के स्वरूप तथा उसके विभिन्न प्रकारों का विवेचन करता है तथा यह भी स्पष्ट करना चाहता है कि आदर्श सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में इनका क्या स्वरूप हो सकता है?

(5) युद्ध, शान्ति, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता का अध्ययन–चूँकि आधुनिक युग में विश्व-परिवार, विश्व-समाज एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की चर्चा बढ़ती जा रही है। अतः सामाजिक-राजनीतिक दर्शन इसके निर्माण में युद्ध से उत्पन्न होने वाली बाधाओं तथा शान्ति की भूमिका और आवश्यकता पर विशद प्रकाश डालता है। यह राष्ट्रीयता बनाम अन्तर्राष्ट्रीयता की समस्या का भी विवेचन करता है।

(6) परम्परा, परिवर्तन और आधुनिकता का विवेचन–सामाजिक-राजनीतिक दर्शन अत्याधुनिक समाज के मानकों का निर्धारण करता है। यह इस प्रसंग में परम्परा के अर्थ, परम्परागत समाज के गुण-दोषों, आधुनिकता के स्वरूप, परम्परा और आधुनिकता के सम्बन्धों, आधुनिक समाज के निर्माण में विज्ञान की भूमिका को स्पष्ट करता है। चूँकि परिवर्तन परम्परा और आधुनिकता के बीच की कड़ी है और परम्परागत समाज परिवर्तन द्वारा आधुनिक बनता है, अतः वह परिवर्तन के स्वरूप तथा आधुनिक समाज के निर्माण में परिवर्तन के मानकों का निर्धारण करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की विषय-वस्तु अत्यन्त व्यापक है। सम्पूर्ण सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियाँ एवं व्यवहार इसके विवेच्य-विषय के अन्तर्गत आती हैं।